स्वाधीनता आन्दोलन मेंप्रेस कानून का देशी भाषा पर प्रभाव

सुशील कुमार[1] प्रो0 (डॉ0) राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव[2]
(1) शोधार्थी, इतिहास विभाग जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा सारण, बिहार,
(2) (सेवानिवृत) प्राचार्य, एच0 आर0 कॉलेज, अमनौर, सारण बिहार
मुख्य शब्द – प्रेस कानून का देशी भाषा पर प्रभाव

सारांश
प्रस्तुत शोध कार्य स्वाधीनता आन्दोलन में पत्रकार एवं समाचार पत्रों की भूमिका से सम्बन्धित है। राष्ट्रीय चेतना के विकास में प्रारम्भ से हीं प्रत्रकारिता एवं समाचार पत्र ने एक अजीब पर आकर्षक हिस्सा अदा किया हैं। इस सदंर्भ में स्वाधीनता आन्दोलन में राष्ट्रीय चेतना कैसे उद्भूत हुई और कैसे इसने अपना विशिष्ट रूप विकसित किया, कैसे यह साहित्य, कला, सामाजिक और राजनैतिक सुधार तथा नए ढंग के संगठनों में अभिव्यक्त हुई, कैसे यह शिक्षा, समाचारपत्र और प्रचार कार्य से प्रसारित हुई, और कैसे यह नए सामाजिक मानकों और राजनैतिक आदर्शों के बनने में सहायक हुई, ये ऐसे विषय हैं जिनपर हम अगले अध्यायों में विचार करेंगे।

शोध प्रविधि
प्रस्तुत शोध आलेख विश्लेषणात्मक एवं वर्णात्मक प्रकृति का है। शोध कार्य के लिए द्वितीयक स्त्रोतो का उपयोग किया गया है। इसके लिए मुख्यतः इंटरनेट से प्राप्त सामग्रियों, प्रकाशित ग्रंथ, पत्र–पत्रिकाओं में छपे–विवरण, निबंध एवं लेख तथा विभिन्न शोध–ग्रंथों को अध्ययन का आधार बनाया गया है।

तथ्य विश्लेषण
19वीं सदी के पूवार्ध में पत्रकारिता अपने बचपन में थी। बहुत से पत्र निकले, पर अधिकांश थोड़े दिन जीकर मर गए, उनकी ग्राहक संख्या बहुत थोडी थी। जिनकी संख्या 1887 में 5 हो गई। समाज में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के आन्दोलनों से काफी उबाल आ रहा था, और सुधार तथा परम्परावादियों में होने वाले वाद–विवाद से काफी सनसनी थी। राजनैतिक जीवन का जहाँ तक सम्बन्ध है, 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम और उसके बाद की भंयकर घटनाओं से बंगाल बचा हुआ था।

1780 में जे. ए. हिक्की ने एक साप्ताहिक 'बंगाल गजट' जो 'कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' भी कहलाता था और 'हिक्की गजट' नाम से अधिक प्रसिद्ध रहा, प्रकाशित किया। हिक्की ने यूरोपीय समाज के कुछ सदस्यों और वारन हेस्टिंग्स तथा इलिजा इम्पे जैसे ऊंचे अफसरों पर जो आक्रमण किए, उनसे सरकार नाराज हो गई। उनके विरुद्ध पहला कदम यह उठाया गया कि उनको डाक की सुविधाओं से वंचित कर दिया गया और उसके बाद उनके छापेखाने पर कब्जा कर लिया गया। इसी के साथ उनका पत्रकार–जीवन समाप्त हो गया। इसके बाद दूसरे अखबार प्रकाशित हुए। वे अक्सर सरकार से असन्तुष्ट अंग्रेजों के पत्र होते थे। सरकारी नीतियों पर की गई टिप्पणियों से अधिकारी लोग नाराज होते थे और कभी–कभी वे जो खबरें, विशेषकर सेनाओं के सम्बन्ध में प्रकाशित करते थे, प्रशासन के हित के विरुद्ध होती थीं। इसका नतीजा यह रहा कि इन प्रारम्भिक पत्रों के साथ सरकार के सम्बन्ध वैमनस्यपूर्ण रहे। इनमें से कुछ को सरकारी क्रोध का सामना करना पड़ा था।
इन उपायों से सन्तुष्ट न होकर वेलेजली ने पत्रों पर बहुत कड़ा सेंसर लगा दिया और लार्ड हेस्टिंग्स के समय तक स्थिति मुक्त प्रकाशन के प्रतिकूल रही। 1818 में हेस्टिंग्स ने पत्रों का सेंसर समाप्त कर दिया, पर उसने प्रेस नियम बनाए। ये नियम इस प्रकार थेः–
पत्र समपादकों को इन शीर्षकों में आने वाली किसी प्रकार की सामग्री को छापने से निषिद्ध किया जाता है–
(1) माननीय निदेशक मण्डल द्वारा प्रवर्तित किसी कार्य या उनकी कार्रवाई की या भारत सरकार से सम्बन्धित इंग्लैण्ड के अन्य सार्वजनिक अधिकारियों की किसी प्रकार निन्दा; स्थानीय प्रशासन के राजनैतिक कार्य पर किसी प्रकार का निन्दात्मक लेख; कौंसिल के सदस्यों, उच्चतम न्यायालय के जजों या कलकत्ता के लार्ड बिशप के सार्वजनिक व्यवहार पर किसी प्रकार की आपत्तिजनक टीका।
(2) स्थानीय जनता के धार्मिक मतों या रिवाजों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप का भय या सन्देह की प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाले वाद–विवाद।

(3) अंग्रेजी या अन्य पत्रों से ऐसे प्रसंगों का उद्धरण, जो ऊपर की मदों में आ जाते हैं या अन्य किसी ऐसी सामग्री का प्रकाशन जो भारत में ब्रिटिश शक्ति या प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाती हो।

(4) व्यक्तियों की निजी कुत्सा और आक्षेप समाज में झगड़ा–बखेड़ा पैदा हो।

भारतीय पत्र शुरू–शुरू में प्रशासन की आलोचना से बचते थे। पर धीरे–धीरे कार्नवालिस की तथा उसके बाद आने वाले लोगों की नीतियों के परिणाम अपने आप सामने आने लगे और भारतीयों को अपने शासकों के अधीन जो समर्थन मिला हुआ था, उससे वंचित होना बुरी तरह अखरने लगा। लगान की कड़ी नीति के साथ ही लगानमुक्त जमीनों को मनमाने ढंग से फिर से ले लेने के कारण असन्तोष बहुत फैल रहा था। इस पर ईरानी फौजों द्वारा हेरात का घेरा, नेपाल और बर्मा के साथ युद्ध और भारतीय राजाओं के दरबारों में नेपाल दरबार द्वारा भेजे हुए मिशन आदि घटनाओं ने इस असन्तोष को और भी बढ़ा दिया।
परन्तु इसके बावजूद 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय पत्रों का राजनैतिक प्रभाव सीमित ही रहा। सरकार यह जानती थी कि कलकत्ता जैसे शहर में भी बहुत कम लोग अखबार पढ़ते थे और शहर के बाहर और भी कम। जमींदार बिल्कुल उदासीन थे, इतने उदासीन कि वे महीने में डेढ़ रुपया खर्च कर के एक अखबार को खरीदने तथा उसका डाक व्यय देने को तैयार नहीं थे, यद्यपि के ब्राह्मणों को दान देने तथा रूढ़िवादी रीति–रिवाजों पर खूब धन लुटाते थे। रही जनता की बात, उसकी यह हालत थी कि उसे राजनैतिक मामलों की बिल्कुल जानकारी नहीं थी। प्रशासन का यह विचार था कि ''भारतीय जनमत का कोई जोर नहीं है और इसलिए सब धर्मों, जातियों और वर्गों के लोगों में एकता स्थापित होने की बहुत थोड़ी संभावना है।''[3]

इतने पर भी भारतीय जनमत पर पत्रों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। 'फ्रेंड ऑफ इण्डिया' ने 1838 के 8 नवम्बर के अंक में यह लिखा–भारतीय जनमत को शिक्षित करने में समाचार पत्र बहुत बड़ा योगदान कर रहे हैं। जब कोई राष्ट्र युगों तक सोता रहा हो, तो पहला काम उसे जागृत करना होता है। आज के पत्र इस काम को पहले से कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से कर रहे हैं।
विलियम डिगबी ने 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय पत्रों के इतिहास पर आलोचना करते हुए यह लिखा कि ''भारतीय अखबार अब जनता का विश्वास प्राप्त कर चुके हैं, जिनके साथ कि वे सम्पर्क में रहते हैं और इन पत्रों के स्तम्भों में जो बातें छपती हैं, उन्हें ऐसे भावों की अभिव्यक्ति समझा जा सकता है जिसके पीछे काफी शक्ति होती है।'' उन्होंने और आगे लिखा– ''परोक्ष रूप से इसके असर बहुत ही जबरदस्त होते हैं, असल में यह एक ऐसा बच्चा है जो बड़ा होकर बहुत असाधारण होगा, ऐसी आशा की जा सकती है।
1857 के 13 जून की विधान परिषद् की सभा में बोलते हुए लार्ड कैनिंग ने दूसरी बातों के साथ–साथ यह कहा–''मुझे सन्देह है कि इस बात को लोग अच्छी तरह समझते और जानते हैं या नहीं कि भारत की देशी जनता के हृदयों में पिछले कुछ सप्ताहों में किस खतरनाक हद तक राजद्रोह का विष फैलाया गया है। स्पष्ट है कि इसमें देशी पत्रों का हाथ है। ''[7]

सब तानाशाही सरकारों की तरह भारत सरकार भी भारतीय पत्रों के बढ़ते हुए प्रभाव से भय खा रही थी। ब्रिटिश नौकरशाही और अंग्रेज किसी भी कड़ी आलोचना पर नाराजगी प्रदर्शित करते थे और यह सलाह देते थे कि प्रेस पर बहुत कड़ा नियन्त्रण किया जाए,बंगाल के ले० गवर्नर ने इस आधार पर कानून बनाने के लिए जोर दिया कि लोगों में सरकार के कार्यों की निन्दा करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है और सरकारी अफसरों के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों पर इस रुख से टीका की जा रही हैं, जो निश्चित रूप से राज भक्ति के विपरीत है और कभी–कभी राजद्रोह की हद तक पहुँच जाती हैं। इसपर भारत सरकार ने कुछ करने का विचार किया और 1878 की 14 मार्च को लार्ड लिटन ने कौंसिल को मजबूर किया कि वह वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट लागू करे, जिससे मैजिस्ट्रेट्रों को यह अधिकार मिल जाए कि वे भारतीय पत्रों के सम्पादकों से या तो बांड लिखा लें कि वे कोई आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित नहीं करेंगे या वे छापने के पहले निरीक्षण के लिए प्रुफपेश करेंगे।

भारतीय पत्रों ने इसका प्रतिवाद किया और कानून की आवश्यकता और औचित्य पर सन्देह प्रकट किया और साथ ही राजभक्ति की घोषणा की। इसके प्रतिवाद में सभाएं हुई, जिनमें इस कानून की निन्दा की गई। लार्ड रिपन की सलाह पर यह कानून 1882 की 19 जनवरी को रद्द कर दिया गया और भारत के पत्रों के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ।

बकिंघम का पत्र 'कलकत्ता जनरल' न केवल स्वतन्त्र मत का प्रतिपादक था, बल्कि सरकारी कारनामों का निर्भीक आलोचक भी था। इस पत्र में भारतीय पत्रों की टिप्पणियां उद्धृत की जाती थीं और उनमें से कुछ की लेखसूची भी प्रकाशित होती थी। बकिंघम राममोहन राय के मित्र थे और भारतीय पत्र उनकी इस मिसाल से काफी प्रभावित हुए।

1835 की 6 फरवरी को कलकत्ता के कुछ पत्रकारों के हस्ताक्षर से एक अर्जी दी गई। पत्रकारों में अधिकतर भारतीय थे और यह अर्जी सपरिषद गवर्नर जनरल को इस उद्देश्य से दी गई कि 1823 के नियम तथा उसके मातहत बनाए हुए उपनियमों को रद्द किया जाए। बेंटिंग ने यह माना कि पत्रों के सम्बन्ध में बने कानून असंतोषजनक हैं और उन्होंने बदलने का वायदा किया। पर ऐसा करने से पहले ही वह सेवा निवृत्त हो गए और मेटकाफ ने आकर चार्ज ले लिया।

1835 में सर चार्ल्स मेटकाफ ने पत्रों पर से प्रतिबन्ध हटाने का साहसपूर्ण कदम उठाया। पर इससे निदेशक मण्डल उससे रुष्ट हो गया। स्पष्टतया सरकारी अफसरों में दो गुट थे। एक गुट यह समझता था, जैसा कि सर टामस मनरों के शब्दों में कहा जा सकता है कि–स्वतंत्र पत्रकारिता और विदेशियों का राज–ये दोनों बातें परस्पर विरोधी है और दोनों साथ–साथ नहीं चल सकतीं।[8] इसके अनुसार स्वतन्त्र पत्रकारिता और स्वतन्त्रता स्वभावतया साथ–साथ चलती है। यह अपने स्वाभविक रूप में तानाशाही शासन के विरुद्ध, विशेषकर विदेषी शासन के विरुद्ध, होती है।[9]

1835 और 1857 के बीच 100 से अधिक पत्र चालू हुए। इन पत्रों में धर्म, सदाचार, रीति–नीति, साहित्य, विज्ञान, संसार की घटनाएं इतिहास, अर्थ–व्यवस्था और शासन जैसे चिन्तन और कार्य के लगभग प्रत्येक क्षेत्र के सम्बन्ध में लेख और समाचार होते थे।

कलकत्ता के बाद छापेखाने खुलने पर बम्बई में अखबार चालू हुए। पहला अंग्रेजी समाचार–पत्र 'बम्बई हैरल्ड' साप्ताहिक 1789 में प्रकाशित हुआ और उसके एक साल बाद 'बम्बई कूरियर' प्रकाशित हुआ। 'बम्बई गजट', जो सरकारी पत्र के रूप में हो गया, 1791 में प्रकाशित हुआ और 1792 में हैरल्ड में मिला दिया गया। स्वाभाविक रूप से अंग्रेजी भाषा के पत्र अंग्रेजों की दिलचस्पी की सामग्री प्रकाशित करते थे जैसे ब्रिटिश संसद में हुई बहस की रिपोर्ट, इंग्लैण्ड तथा यूरोप के देशों की घटनाओं के ब्यौरे, भारतीय शासकों की योजनाएं तथा यूरोप–निवासियों के सामाजिक समाचार। सरकार इन पत्रों का उपयोग रेकार्ड के काम के लिए तथा अपनी विज्ञप्तियों के प्रकाशित करने के काम के लिए भी करती थी। इसके साथ ही इन समाचार पत्रों में ब्रिटिश प्रशासन पर टिप्पणियां भी प्रकाशित होती थीं। ये टिप्पणियां उन लोगों के द्वारा होती थीं, जो कम्पनी के उच्च अधिकारियों में नहीं थे। उनकी इस आलोचना का कुछ न कुछ असर तो सरकार पर पड़ा ही था।

बम्बई में भारतीयों द्वारा पहला छापाखाना 1812 में स्थापित हुआ। इसका नाम 'गुजराती समाचार प्रेस' था और इसके संस्थापक थे फर्दूनजी मर्जबान। 1822 में पहला गुजराती समाचार–पत्र 'मुम्बई समाचार' इस छापखाने से प्रकाशित हुआ। यह 1837 में दैनिक हो गया। बम्बई सरकार का रुख भी बंगाल की ही तरह पत्र–जगत् के प्रति असहानुभूतिपूर्ण ही रहा। विशेषकर एल्फिन्स्टन का यह मत था कि नियन्त्रण और जोरदार होना चाहिए। 'बम्बई गजट' उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों को प्रकाशित करके सरकार का कोप–भाजन बन गया। नतीजा यह हुआ कि इसके सम्पादक सी.जे. फेयर को देश निकाला दे दिया गया। 1825 में एक रेगूलेशन प्रकाशित हुआ जिसके द्वारा मालिक, सम्पादक तथा मुद्रक को अपना नाम पंजीकृत कराना पड़ता था।

दूसरे गुट मत इतना निराशावादी नहीं था। ऐसे लोगों में सर चार्ल्स ट्रेवलियन थे जो 'इन्डोफीलस' के छद्म नाम से पत्रों में लेख लिखते थे और उनका मत यह होता था कि सरकार के अधिकारियों पर जनमत का प्रभाव लाभदायक होता है। उनका कहना यह था कि प्रतिनिधिमूलक विधान सभा की अनुपस्थिति में इसके अलावा और कोई माध्यम नहीं है जिससे शासन के दुरुपयोग पर रोशनी डाली जा सकती हो और जनता की भावना जानी जा सकती हो।

मेटकाफ ने भारतीय पत्र जगत पर से नियन्त्रण हटाने की उपयुक्तता के बारे में सारा सन्देह यह कहकर दूर कर दिया–यदि भारत के लोगों को अज्ञान में रखकर ही उसे ब्रिटिश साम्राज्य का भाग बनाए रखा जा सकता है, तो हमारा राज इस देश के लिए एक अभिशाप सिद्ध होगा और इसे समाप्त हो जाना चाहिए।[10]

इस प्रकार से प्रेस की स्वतन्त्रता के जिस युग की शुरूआत हुई, उससे जनमत और पत्रों को पनपने में काफी बल मिला। बहुत से नए पत्र चालू हुए, यद्यपि इनमें से कई थोड़े दिन चालू होने के बाद बन्द हो गए। ऐसे प्रकाशित होने वाले पत्रों में दैनिक, अर्ध साप्ताहिक, सप्ताह में तीन बार प्रकाशित होने वाले, मासिक तथा त्रैमासिक पत्र थे। इस प्रारम्भिक युग में उनकी ग्राहक संख्या थोड़ी थी। पर उनका प्रभाव उनकी ग्राहक संख्या से कहीं अधिक था।

यदि लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का सार विचार–विमर्श और तर्क–वितर्क द्वारा प्रबोधन करना है, तो भारत बहुत तेजी से यह कला सीख रहा था। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में मौजूदा स्थितियों में यह अनिवार्य था कि यह प्रक्रिया नए मध्यम वर्ग तक ही सीमित रहती और बंगाल सारे भारत को पत्रकारिता के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करता।

1830 में नौरोजी दोराबजी चन्दारू ने 'मुम्बई वर्तमान' नाम से एक गुजराती साप्ताहिक प्रकाशित किया। यह 13 महीने बाद अर्ध साप्ताहिक हो गया। हो गया। 1831 में पेस्टनजी मानेकजी मोतीवाला ने गुजरात में 'जामें जमशेद' नाम से एक साप्ताहिक प्रकाशित किया जो थोड़े दिनों बाद दैनिक बन गया।

1851 में बम्बई के पत्रों में एक और दिलचस्प पाक्षिक पत्र 'रस्त गुफ्तार' दादाभाई नौरोजी के सम्पादकत्व और खुरशेदजी कामा की वित्तीय सहायता से प्रकाशित हुआ। दादा भाई कावसजी ने अगले साल 'अखबारे सौदागर' संस्थापित किया।

बाल शास्त्री जम्बेकर ने 1832 में प्रथम मराठी समाचारपत्र 'बम्बई दर्पण' नाम से आरम्भ किया। इसके उद्देश्यों में यह कहा गया था–अपने देशवासियों में अंग्रेजी साहित्य की चर्चा को प्रोत्साहित करना तथा देश की समृद्धि और इसके निवासियों की खुशहाली से सम्बद्ध विषयों पर स्वतन्त्र और सार्वजनिक वाद–विवाद का एक क्षेत्र तैयार करने के उद्देश्य से बम्बई के कुछ निवासियों ने 'बम्बई दर्पण' नाम से यह अखबार प्रकाशित करने का इरादा किया है।..... यह प्रकाशन मुख्यतः देशी लोगों में यूरोपीय साहित्य का अध्ययन और यूरोपीय ज्ञान के प्रचार के लिए शुरू किया गया है। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर दो स्तंभ होंगेः एक अंग्रेजी में और दूसरा मराठी में। पत्र ने अपने बताए हुए उद्देश्यों के अनुसार चलने की चेष्टा की। पर जब 1840 में यह बन्द हुआ तो इसकी तरफ से कहा गया मराठी भाषा में अखबारों के प्रति रुचि प्रोत्साहित करने तथा धर्म और राजनीति में देशवासियों को उन्नत करनेवाले उदार विचारों को फैलाने के लिए हमने यह पत्र प्रकाशित किया था।

1840 में बाल शास्त्री ने 'दिग्दर्शन' नाम से शिक्षा संस्कृति का तथा विज्ञान आदि विषयों पर विवेचन करने के लिए एक मासिक प्रकाशित किया। लगभग उसी समय उनके साथी भाऊ महाजन ने 'प्रभाकर' का सम्पादन शुरू किया। 1842 में मिशनिरियों ने 'ज्ञानोदय' प्रकाशित किया। पूना से पहला पत्र 'ज्ञान–प्रकाश' नाम से 1849 में प्रकाशित हुआ।

मद्रास प्रेसीडेन्सी में पहला अंग्रेजी पत्र 1785 में 'मद्रास कूरियर' नाम से प्रकाशित हुआ। इसे सरकारी मान्यता मिली और यह सरकारी विज्ञप्तियों को प्रकाशित करता रहा। 2 साल बाद इसके सम्पादक बायड ने इस पत्र से अपना नाता तोड़ लिया और 'हरकारू' नाम से एक पत्र की स्थापना की। इसके बाद 1797 से साप्ताहिक 'मद्रास गजट' प्रकाशित हुआ और इसके कुछ ही दिन बाद एक अनधिकृत पत्र 'इंडियन हैरल्ड' प्रकाशित हुआ। मद्रास सरकार ने पत्र जगत की तरफ उसी तरह का सन्देहात्मक रुख दिखाया जैसा कि दूसरी प्रेसिडेन्सियों ने दिखाया था। नियन्त्रण के साधन के रूप में लायसेंस और सेंसर के तरीके अपनाए गए। जो सम्पादक उनके ढंग पर नहीं चलते थे, उन्हें देश निकाला दे दिया जाता था।

मद्रास में पत्रकारिता की प्रगति धीमी रही। 1858 तक भारतीय भाषाओं में पत्रों की संख्या कम थी। 1877 तक 26 पत्र चालू थे। मद्रास से उर्दू और फारसी में भी कुछ पत्र जैसे, अजकुल अखबार, तासीर–अल अखबार, आफताबी आलम ताब, जमाअल अखबार आदि प्रकाशित होते थे।

उत्तर भारत बाद में अंग्रेजों के अधीन हुआ और इसलिए 19वीं सदी के दूसरे दशक के बाद ही समाचार–पत्र प्रकाशित होने शुरू हुए। कानपुर एक महत्वपूर्ण ब्रिटिश सैनिक केन्द्र था। 1822 में कानपुर 'एडवरटाइजर', 1828 में 'ओमनीबस', 1835 में मेरठ से 'यूनीवर्सल मैगजीन' का प्रकाशन शुरू हुआ। 1833 में 'दिल्ली एडवरटाइजर' प्रकाशित हुआ जिसका नाम 1856 में बदल कर 'इण्डियन टाइम्स' कर दिया गया। बनारस से 'रिकार्डर' प्रकाशित हुआ।

इस क्षेत्र में फारसी और उर्दू के काफी पत्र प्रकाशित होते थे। फारसी पत्रों में से 'जुब्दातुल अखबार' (1823), 'मेहर–इ–मुनीर' (1841), 'सिराज–उल–अखबार' (1841), और 'एहसान–उल–अखबार' (1844) इत्यादि थे। उर्दू अखबारों में इन पत्रों का उल्लेख किया जा सकता है–'आगरा अखबार', 'दिल्ली अखबार', 'सैयदुल अखबार', 'सादिक उल अखबार', 'करीमुल अखबार', 'असद–उल–अखबार', 'बनारस अखबार', 'अफताब–इ–हिंद', और 'कोहेनूर' इत्यादि। सच तो यह है कि 1848 तक उत्तर पश्चिमी प्रान्तों और पंजाब में लगभग 18 छापेखाने स्थापित हो चुके थे और दो के अलावा सभी छापेखाने कोई न कोई पत्र प्रकाशित करते थे।

फारसी अखबारों में 'सिराजुल अखबार', दिल्ली के सम्राट का दरबारी गजट था। 'जुबदात–उल–अखबार' के मालिक और सम्पादक थे मुंशी वाजिदअली खां। यह एक जिम्मेदार और अच्छी सूचनाएं देने वाला पत्र था। पर इसकी प्रवृत्तियां रूढ़िवादी थीं, यद्यपि इसके विचार बहुत नपी–तुली तथा नियंत्रित भाषा में व्यक्त किए जाते थे।

दूसरी भारतीय भाषाओं के अखबारों में पंजाब से निकलने वाला 'कोहेनूर' जिसे मुंशी हरसुख राय ने शुरू किया था, महत्वपूर्ण था। बनारस के 'बागो–बहार' में चिकित्सा शास्त्र, इतिहास, ज्योतिष और दूसरे विषयों पर लेख निकलते थे। मुंशी सदासुखलाल दो अखबार निकालते थे एक उर्दू में 'नूरूल–अखबार' और दूसरा हिन्दी में 'बुद्धि प्रकाश'। दोनों का सम्पादन योग्यता के साथ होता था।

इनके अलावा दो मासिक पत्र 'किरान–उस–सदैन' और 'फुआदुन नजरीन' भी उल्लेखनीय है जो दिल्ली के मतला–उल–उलूम प्रेस से प्रकाशित होते थे। इनके स्तम्भ यूरोपीय विज्ञान के विषयों से भरे होते थे। इस प्रकार पत्र दो भूमिकाएं अदा कर रहे थे, एक तरफ तो वे सरकार की राजनीति और तौर–तरीकों पर प्रभाव डालने की कोशिश कर रहे थे और दूसरी तरफ वे जनता को शिक्षित और जागृत करने की कोशिश कर रहे थे।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत आरेख में स्वाधीनता आन्दोलन मेंप्रेस कानून का देशी भाषा पर प्रभाव हुआ कि जनता को अंग्रेजो की शोषण करने की नीति समाचार पत्रों के माध्यम से मालूम होने लगाऔरजनताअंग्रेजो के खिलाफआन्दोलितहोने लगी एंव अंग्रेजो के द्वाराविभिन्नप्रकार के लगाए गए कड़ेनियम–कानूनोंकाविरोध होनेलगाऔरजनतानिडरहोती गईअंग्रेजो के शक्तिकाह्यसहोतागयासत्ताउनकीहाथोंसे जाने लगी हमारे, पत्र, छापाखाने तथा संपादकों पर लगाए गए नियम–कानून में ढ़ील होती गईनियमआसानकरदिए गए औरसमाचार पत्रों, छापाखानों एंवसंपादकों को खुलकर लिखने और छापने की आजादी पुनः वापसआगई।

संदर्भ ग्रन्थों की सूचीः–

ख1, एम बार्न्स उद्धत, पृ. 251, बम्बई के गवर्नर लार्ड एलफिन्स्टन की टिप्पणी से, 24 जून,1857.
ख2, वहीं।
ख3, ए. बार्न्स द्वारा उद्धत, पृ. 222.
ख4, कलकत्ता रिव्यू, जिल्द 65, 1877, पृ. 388. 14...93 डण वि – ठ छक्ध्80ण
ख5, एल. आर. रीड–लार्ड सभा की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही, 15 जून, 1852 (2684)।
ख6, वही, (2701)।
ख7, ''दि फ्रेंड ऑफ इण्डिया,'' 20 दिसम्बर, 1840.
ख8, वही, 19 सितम्बर, 1850.
ख9, ''दि कलकत्ता रिव्यू,'' 1877, पृ. 364–65.
ख10, वहीं, 1908, पृ. 208–209.
ख11, कलकत्ता रिव्यू, जिल्द 65, 1877, पृ. 388. 14...93 डण वि – ठ छक्ध्80ण